इकाई - 20

अर्थसंग्रह
(धर्म, भावना, विधि, निषेध, अर्थवाद)

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य

हम एम० ए० पूर्वार्द्ध संस्कृत के प्रश्नपत्र भारतीय दर्शन (MASA-03) के अन्तर्गत लौगाक्षीभास्कर कृत अर्थसंग्रह नामक प्रकरण ग्रन्थ का अध्ययन करने जा रहे है। हम यहाँ अर्थसंग्रह के कतिपय प्रतिपाद्य विषयों के अन्तर्गत निम्नलिखित तथ्यों का अवबोध कर सकेगें –

- वेद एवं उसके प्रयोजन का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगें।
- धर्म के लक्षण एवं धर्म की उचित समीक्षा का अवबोध कर पायेंगे।
- वेदों में विद्यमान विधिवाक्यों के भेद एवं उनके भेद का ज्ञान प्राप्त कर पायेंगें।
- वे वैदिक वाक्य जो प्रसंशापरक है, उन अर्थवाद वाक्यों की वेद में महत्ता का ज्ञान प्राप्त कर पायेंगें।
- निषेध वाक्यों के प्रयोग की सार्थकता का ज्ञान प्राप्त कर पायेंगें।

20.1 प्रस्तावना

भारतीय दार्शनिक चिन्तन वैदिक काल से प्रारंभ होकर अद्यावधि निरन्तर प्रवाहमान है। भारतीय दर्शन में वेद की प्रमाणता को न मानने वाले दर्शनों को 'नास्तिक' कहा गया। इसके विपरीत वेद में आस्था रखने वाले दर्शन 'आस्तिक दर्शन' कहलाये, जिनकी संख्या ६ है। इन दर्शनों में 'मीमांसा दर्शन' का स्थान अन्यतम है। आज भी वेद, ब्राह्मणादि को समझने के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों के ज्ञान हेतु 'मीमांसा' का आश्रय लिया जाता है।"अर्थसंग्रह" मीमांसा का एक लघुकाय प्रकरण ग्रन्थ है, जिसमें शाबरभाष्य में प्रतिपादित बहुत से विषयों का अतिसंक्षेप में निरूपण है। संक्षेप में अधिकतम विषयों को प्रस्तुत करने के कारण इस ग्रन्थ का प्रचार जिज्ञासु-सामान्य में अत्यधिक हुआ और उपयोगी होने पर भी अनेक प्रकरण ग्रन्थ इतने प्रचलितन हो सके। प्रकरण ग्रन्थ की परिभाषा इस प्रकार की गई है :-

शास्त्रैकदेशसम्बद्धं शास्त्रकार्यान्तरे स्थितम्।
आहुः प्रकरणं नाम ग्रन्थभेदं विपश्चितः॥

(अर्थात् 'शास्त्र के एक भाग से सम्बद्ध तथा शास्त्र के (विशिष्ट) विषय के अन्दर स्थित (ग्रन्थ) को विद्वान् लोग प्रकरण नामक ग्रन्थ का भेद कहते हैं।')इस परिभाषा के अनुसार 'प्रकरण' सम्पूर्ण शास्त्र के विषय से सम्बद्ध न होकर उसके किसी विशिष्ट विषय से सम्बद्ध होना चाहिए। इसके रचनाकार लौगाक्षि भास्कर हैं। इस ग्रन्थ में धर्म,भावना,विधि आदि विषयों का मुख्यतः विवेचन हुआ है। यहाँ हम अर्थसंग्रह के प्रमुख प्रतिपाद्य विषयों का ज्ञान करेंगें।

20.3 भावना

20.3.1 भावना की परिभाषा

'स्वर्गकामो यजेत्' पद के 'यज्' धातु से सम्बद्ध प्रत्यय 'आख्यातत्व' और 'लिङ्गत्व' के द्वारा जिसे व्यक्त किया जाता है वह भावना ही है।

'भवितुर्भवनानुकूलो भावयितुर्व्यापारविशेषो भावना।'

उत्पन्न होने वाले का भवनानुकूल, उत्पत्तिजनक जो प्रयोजक का व्यापार विशेष है वही भावना है। भावना के उपर्युक्त लक्षण को इस लौकिक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है—यज्ञदत्त ने देवदत्त से कहा 'ओदनं पच'। अब देवदत्त यज्ञदत्त के उक्त वाक्य को सुनकर सोचता है कि यज्ञदत्त का अभिप्राय है—मुझ (देवदत्त) में ओदन पकाने के प्रति प्रवृत्ति उत्पन्न करना, ताकि मैं ओदन पकाऊँ। इस प्रकार यज्ञदत्त के उक्त वाक्य से देवदत्त में ओदन पकाने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है और उसके अनुसार वह तण्डुलादि सामग्री लेकर ओदन पकाने की क्रिया सम्पन्न करता है। यहाँ यज्ञदत्त का उक्त 'अभिप्राय' ही 'भावना' है क्योंकि देवदत्त की 'प्रवृत्ति' के उत्पन्न होने में वही 'कारण' है । मीमांसा की पारिभाषिक शब्दावली में इसे 'शाब्दीभावना' कहते हैं। देवदत्त की इस प्रवृत्ति का विषय है—'ओदन-पाचन'। इस पाकात्मक क्रिया के अनुष्ठान में देवदत्त की उक्त प्रवृत्ति ही 'अनुकूल' अर्थात् कारण है। देवदत्त की इस 'प्रवृत्ति' को ही मीमांसक 'आर्थीभावना' कहते हैं।

'यजेत् स्वर्गकाम:' इस वैदिक विधिवाक्य में भावना को इस प्रकार समझा जा सकता है। 'यजेत्' पदस्थ 'त' प्रत्यय में विद्यमान 'लिङ्ग अंश' भावयिता (उत्पादयिता) है, क्योंकि प्रवर्तता 'लिङ्गत्व' में ही रहती है। 'त' प्रत्ययस्थ आख्यातत्वांश की क्रिया सामान्य का बोधक होने के कारण 'भावयिता' नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार प्रत्ययरहित यज् धातु से प्रेरणा का बोध न हो सकने के कारण उसे भी 'भावयिता' नहीं माना जा सकता। 'स्वर्गकाम:' पद अधिकारी पुरुष का विशेषणमात्र है, अत: वह भी 'भावयिता' नहीं हो सकता। उपर्युक्त वाक्य को सुनकर स्वर्ग की कामना करने वाले व्यक्ति में उत्पन्न 'यागानुष्ठानविषयक प्रवृत्ति' ही भविता (उत्पद्यमान) है। अत: यह प्रवृत्ति भावनाराध्य है।

20.3.2 भावना के भेद

भावना के दो भेद माने गए हैं

1. शाब्दी भावना 2. आर्थी भावना

सा च द्विधा शाब्दीभावना आर्थीभावना चेति।

20.3.2.1 शाब्दी भावना

तत्र पुरुष प्रवृत्त्यनुकूलो भावयितुर्व्यापारविशेष शाब्दीभावना।

दोनों प्रकार की भावनाओ में भावयिता (प्रयोजक का प्रयोज्य में) का पुरुष में प्रवृत्ति उत्पन्न करने वाला 'व्यापारविशेष' शाब्दी भावना है। वह (शाब्दी भावना) लिङ्ग अंश के द्वारा कही जाती है क्योंकि लिङ्ग अंश को सुनने पर ''यह प्रयोजक मुझे कर्मादि में प्रवृत्त करता है'' अत: यह प्रयोजक पुरुष मेरी प्रवृत्ति को उत्पन्न करने में अनुकूल व्यापार वाला है' यह नियमत: प्रतीत होता है।

जो जिस शब्द से नियमत: प्रतीत होता है वह उस शब्द का वाच्य अर्थ होता है। जैसे 'गामानय' इस वाक्य में गां शब्द का अर्थ 'गोत्व' है। वह व्यापार विशेष लौकिक वाक्य में पुरुष निष्ठ अभिप्राय विशेष है लेकिन वैदिक वाक्य पुरुष का अभाव होने के कारण लिङ्ग शब्द निष्ठ होती है इसलिये शाब्दी भावना नाम का व्यवहार किया जाता है।

शाब्दी भावना को तीन अंशों की अपेक्षा है—

1. साध्य 2. साधन 3. इतिकर्तव्यता

1. साध्य — क्या किया जाए?
2. साधन — किससे किया जाए?
3. इतिकर्तव्यता — किस प्रकार किया जाए?

20.3.2.2 आर्थी भावना

प्रयोजनेच्छाजनित क्रिया— विषय व्यापार आर्थी भावना। सा च आख्यातत्वांशेनोच्येत। आख्यातसामान्यस्य व्यापारवाचित्वात्।

सरल शब्दों में 'स्वर्गादिप्रयोजनरूपफलविषयक इच्छा से उत्पन्न यागादिरूपक्रियाविषयक व्यापार 'आर्थीभावना' कहा जाता है। जैसे 'यजेत् स्वर्गकाम:' वाक्य को सुनकर पुरुष में स्वर्ग प्राप्त करने की इच्छा होती है, परन्तु स्वर्गरूप प्रयोजन की प्राप्ति यागादिरूप क्रिया से ही सम्भव है। अत: श्रोता में स्वर्गरूपप्रयोजन को प्राप्त करने की इच्छा से यागादिरूपक्रिया के सम्पादन करने की प्रवृत्ति उत्पन्नहोती है। पुरुष की यह यागविषयकप्रवृत्ति ही उसका मानसिक व्यापार है और इसी को 'आर्थी भावना' कहते हैं।

आर्थी भावना भी साध्य, साधन और इतिकर्तव्यतारूप तीनों साधनों की अपेक्षा रखती है।

20.4 विधि

20.4.1 वेद

अपौरूषेयं वाक्यं वेद:। अर्थात् अपौरुषेय वाक्य वेद है। इन शब्दों से वेद का लक्षण बताकर विधि, मन्त्र, नामधेय, निषेध और अर्थवाद इन पाँच भेदों को बताया गया है।

'स च विधि-मन्त्र-नामधेय-निषेधार्थवाद भेदात्पञ्चविध:।'

20.4.2 विधि की परिभाषा

'तत्राज्ञातार्थज्ञापको वेदभागो विधि:।' अर्थात् अज्ञात अर्थ के बोधक वेदभाग को विधि कहा जाता है। विधि अन्य प्रमाणों से अप्राप्त जिस प्रकार के अर्थ का विधान करती है, उस प्रकार के सप्रयोजन अर्थ के विधान से ही वह सार्थक है। जैसे 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकाम:' यह विधि अन्य प्रमाण से अप्राप्त (अज्ञात) स्वर्ग प्रयोजन वाले होम का विधान करती है। 'अग्निहोत्र होम से स्वर्ग की भावना (प्राप्ति) करे।' यह (उपर्युक्त विधि) वाक्य का अर्थबोध है।

20.4.3 विधि के मुख्य भेद

लौगाक्षिभास्कर ने विधि के भेद-प्रभेदों और उनके विशिष्ट लक्षणों का तीन स्थलों पर भिन्न-भिन्न प्रकार से विवेचन किया है। उनमें से प्रथम वर्गीकरण इस प्रकार से है-

1. प्रधान विधि
2. गुण विधि
3. गुण विशिष्ट विधि

20.4.3.1 प्रधान विधि—

तत्राज्ञातार्थज्ञापको वेदभागो विधि:। अज्ञात अर्थ की ज्ञापक विधि ही प्रधान विधि कहलाती है।

20.4.3.2 गुण विधि—

'यत्र कर्म मानान्तरेण प्राप्तं तत्र तदुद्देशेन गुणमात्रं विद्यते'। अर्थात् जहाँ पर (यागादि) कर्म दूसरे प्रमाण से प्राप्त हों, वहाँ पर उस कर्म को उद्दिष्ट करके गुणमात्र का विधान करती है। जैसे— 'दध्ना जुहोति'।

यहाँ पर 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' इससे होम का विधान प्राप्त होने के कारण होम के उद्देश्य से दधिमात्र का विधान होता है। (इस प्रकार 'दध्ना जुहोति' वाक्य का 'दध्ना होमं भावयेत्' दधि के द्वारा होम का सम्पादन करे, यह अर्थबोध होता है।)

20.4.3.3 गुणविशिष्ट विधि—

यत्र तूभयमप्राप्तं तत्र विशिष्टं विद्यते— यथा—सोमेन यजेतेत्यत्र सोमयागयोरप्राप्तत्वात् सोमविशिष्टयागविधानम्।

अर्थात् जहाँ पर प्रमाणान्तर से गुण और कर्म दोनों अप्राप्त हों, वहाँ पर विधि विशिष्ट का विधान करती है। जैसे—'सोमेन यजेत' यहाँ पर विशिष्ट याग का विधान करती है। 'सोम' पद में मत्वर्थलक्षणा से सोमवान् याग से इष्ट(स्वर्ग) का सम्पादन करे। यह वाक्य का अर्थबोध होता है।

20.4..4 विधि के प्रकारान्तर से अन्य भेद

'विधिश्चतुर्विध:' कहकर लौगाक्षिभास्कर ने प्रकारान्तर से विधि के पुन: चार भेद बताए हैं।

उत्पत्तिविधिर्विनियोगविधिरधिकारविधि: प्रयोगविधिश्चेति।

2.4.4.1 उत्पत्ति विधि

तत्र कर्मस्वरूपमात्रबोधको विधिरुत्पत्तिविधि:। यथा अग्निहोत्रं जुहोति। कर्मस्वरूपबोधक विधि उत्पत्ति विधि कही जाती है। जैसे—अग्निहोत्रं जुहोति। अर्थात् यागादि कर्मस्वरूपबोधक विधि को उत्पत्ति विधि कहते हैं। यथा अग्निहोत्रं जुहोति में द्वितीयान्त 'अग्निहोत्र' पद 'अग्निहोत्र' क्रियारूप प्रधान कर्म का बोधक है। उसी के अनुष्ठान से इष्ट की प्राप्ति मानी जाती है। अत: स्पष्ट है कि अग्निहोत्र क्रिया इष्टफल की साधक है। साधन में हमेशा करणकारक अर्थात् तृतीया विभक्ति होती है। इसलिये प्रकृत विधिवाक्य में 'अग्निहोत्रं जुहोति' का भावार्थ होगा— 'अग्निहोत्रहोमेन इष्टं भावयेत्।

20.4.4.2 विनियोग विधि

अङ्गप्रधानसम्बन्धबोधको विधिर्विनियोगविधि: यथा 'दध्ना जुहोतीति'

अङ्ग के प्रधान अङ्गी आदि के साथ सम्बन्ध का बोध कराने वाली विधि विनियोगविधि होती है। जैसे 'दध्ना जुहोति' यह विभक्ति द्वारा बोधित अङ्गभाव दधि का होम से सम्बन्ध निश्चित करती है। दधि से होम सम्पन्न करें।

अधिक स्पष्ट रूप से जानने के लिये ध्यान रहे कि उत्पत्तिविधि के द्वारा प्रधान क्रिया होमादि का ज्ञान पहले से ही प्राप्त रहता है, विनियोगविधि तो उस प्रधान क्रिया के साधनभूत द्रव्यादि का बोध कराती है। जैसे— 'दध्ना जुहोति'। यहाँ 'अग्निहोत्रं जुहोति' वाच्य द्वारा पहले से ही अग्निहोत्रहोम मुख्य क्रिया के रूप में व्याप्त है। वही साध्य होने के कारण मुख्य(प्रधान) है अत: 'अङ्गी' है। इस अग्निहोत्रहोमरूप प्रधान के साधन अर्थात् अङ्ग के रूप में 'दध्ना जुहोति' वाक्य से 'दधि' का ज्ञान होता है। इस प्रकार 'दध्ना जुहोति' वाक्य से दधिरूप अङ्ग का अग्निहोत्रहोमरूप प्रधान (अङ्गी) के साथ अङ्गाङ्गिभावसम्बन्ध का बोध होता है। अत: इस सम्बन्ध के बोधक वाक्य 'दध्ना जुहोति' में विनियोगविधि हुई।

विनियोगविधि अङ्गाङ्गिभाव सम्बन्ध का बोध कराती है। इस कार्य में श्रुति, लिङ्ग, वाक्य, प्रकरण, स्थान और समाख्या ये छ: प्रमाण सहायक होते हैं। ये छ: प्रमाण अङ्गत्व ज्ञापन में सहायक होते हैं।

20.4..4.3 अधिकार विधि

'कर्मजन्यफलस्वाम्यबोधको विधिरधिकारविधि:' अर्थात् कर्मजन्य फल की स्वाम्यबोधक विधि 'अधिकारविधि' है। कर्मजन्यफलस्वाम्य का अर्थ है— 'कर्मजन्यफलभोक्तृता।' वह (अधिकारविधि) 'यजेत् स्वर्गकाम:' इत्यादि रूप वाली है। स्वर्ग को उद्देश्य करके याग का विधान करती हुई यह विधि स्वर्गकाम व्यक्ति की यागजन्यफलभोक्तृता का प्रतिपादन करती है। 'यस्याहिताग्ने' इत्यादि के द्वारा अग्निदाहादि निमित्त में कर्म का विधान करती हुई निमित्तवत्पुरुष को कर्मजन्यपापक्षयरूप फल का स्वामी प्रतिपादित करती है। इसी प्रकार 'अहरह: सन्ध्यामुपासीत' इत्यादि के द्वारा शुचिविहित समय में जीने वाले व्यक्ति का सन्ध्योपासनजन्य पातकपरिहाररूपफल का स्वामित्व ज्ञात होता है।

कर्म के नित्यादि तीनों प्रकार के उदाहरण अधिकार विधि हेतु यहाँ दिए गए हैं। इन्हें हम एक सरल रेखाचित्र से आसानी से याद कर सकते हैं।

20.4.4.5 प्रयोग विधि

प्रयोगप्राशुभावबोधको विधि: प्रयोग विधि:।

प्रयोगप्राशुभाव की बोधक विधि प्रयोग विधि कही जाती है। जैसे—'दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत्' यह विधि अङ्गों के क्रम का बोध कराती है।

20.4.5 विधि का प्रकारान्तर पुनः विभाजन

विधियों का एक अन्य विभाजन लौगाक्षिभास्कर ने मन्त्र प्रकरण में इस प्रकार दिया है—

1. अपूर्व विधि
2. नियम विधि
3. परिसंख्या विधि

20.4.5.1 अपूर्व विधि

''स्वर्गार्थकयागस्य प्रमाणान्तरेणाप्राप्तस्यानेन विधानात्''

प्रमाणान्तर से अप्राप्त का विधान करने वाली विधि 'अपूर्वविधि' है। उत्पत्ति विधि या प्रधान विधि भी इसी को कहते हैं। 'यजेत् स्वर्गकाम:' इसका उदाहरण है।

20.4.5.2 नियम विधि

''नानासाधनसाध्यक्रियायामेकसाधनप्राप्तावप्राप्तस्यापरसाधनस्यप्रापको विधिर्नियमविधि:''

अनेक साधनों द्वारा साध्य क्रिया के अनभिप्रेत साधन द्वारा सिद्ध होने की स्थिति आने पर अभिप्रेत साधन की प्राप्ति कराने वाली विधि नियमविधि कहलाती है, जैसे—''व्रीहीनवहन्ति''।

20.4.5.3 परिसंख्या विधि

उभयोश्च युगपत्प्राप्ताावितरव्यावृत्तिपरो विधि: परिसंख्या विधि:। यथा - पञ्च पञ्चनखा: भक्ष्या:।'' इति दो वैकल्पिक पदार्थों की युगपत् प्राप्ति होने पर एक विशेष पदार्थ की निवृत्ति का बोध कराने वाली विधि 'परिसंख्या विधि' कही जाती है। उदाहरणार्थ -''पञ्च पञ्चनखा: भक्ष्या:'' इस वाक्य में परिसंख्या विधि है। वस्तुत: परिसंख्या का अभिप्राय निषेधपरक होता है। परिसंख्या का अर्थ ही 'वर्जनबुद्धि' है।

20.5 अर्थवाद

20.5.1 अर्थवाद की परिभाषा

अर्थवाद की परिभाषा - 'प्राशस्त्यनिन्दान्यतरपरं वाक्यमर्थवाद:।' प्रशंसा अथवा निन्दापरक वाक्य को अर्थवाद कहते हैं। अर्थवाद विधेय पदार्थ की प्रशंसा और निषेध्य पदार्थ की निन्दा करता हुआ प्रवृत्ति और निवृत्ति में सहायक होता है अर्थात् अपने अर्थ को प्रकट करता हुआ अर्थवाद करने योग्य कार्य को करने की प्रेरणा देता है और निषेध्य कार्य को त्यागने की प्रेरणा देता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि अर्थवाद उपदेशात्मक प्रवृत्ति वाला होता है किन्तु यह अपना अर्थ अभिधेयार्थ से व्यक्त न कर लक्षणार्थ से व्यक्त करता है।

यथा - 'वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता' इस वाक्य का अर्थ है 'वायु सबसे अधिक तीव्रगामी देवता है' किन्तु इसका प्रयोजन वाच्यार्थ में नहीं है क्योंकि अर्थवाद वाक्य भी वेद का एक भाग है और वेदवाक्य यागादि क्रिया के प्रतिपादक होते हैं अत: यह अर्थवाद वाक्य भी परम्परया, विधेय और निषेध के कारण प्रवृत्ति और निवृत्ति का बोधक है।

20.5.2 अर्थवाद के भेद

'स: द्विविध: विधिशेषो निषेधशेषश्चेति'

अर्थवाद दो प्रकार का होता है— 1. विधिशेष 2. निषेधशेष। इससे पूर्व कि अर्थवाद के भेदों का कथन किया जाए प्रश्न उपस्थित होता है कि इनका नाम विधिशेष और निषेधशेष क्यों रखा गया?
इन्हें विधि और निषेध भी तो कहा जा सकता था। इसके उत्तर में महर्षि जैमिनी कहते हैं— विधिना त्वेकवाक्यत्वात् स्तुत्यर्थेन विधिनां स्यु:। (जैमिनी सूत्र 1.27) अर्थात् विधि एवं अर्थवाद की एकवाक्यता मानी जाती है क्योंकि दोनों मिलकर एक समग्र वाक्य की रचना करते हैं। अत: 'अर्थवाद' को विधिशेष कहना उचित है और यही बात निषेधशेष पर भी लागू होती है।

20.5.2.1 विधिशेष —

'वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकाम:' इत्यादिविधिशेषस्य 'वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता' इत्यादिर्विधेयार्थप्राशस्त्यबोधकतयार्थकत्वम्।'

इन दो वाक्यों में 'वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकाम:' इत्यादि विधिविशेष के 'वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता' इत्यादि(मन्त्र) की विधेयार्थ के प्रशंसाबोधक होने के कारण सार्थकता है।

'वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता' वाक्य का अर्थ है— 'वायु सबसे अधिक तेज चलने वाला देवता है।' यह वाक्य अपने आप में अधूरा है और अपने वाच्यार्थ से इसका कोई प्रयोजन नहीं है। इस अर्थवाद वाक्य का विधिवाक्य है— 'वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकाम:।' यह विधि 'ऐश्वर्य चाहने वाले व्यक्ति को वायुदेवता को उद्देश्य करके श्वेत पशु के आलभन' करने का विधान करती है। यहाँ 'वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता यह अर्थवादवाक्य वायु देवता की प्रशंसा करके लक्षणा द्वारा यह बताता है कि वायु अन्य सभी देवताओं से शीघ्रगामी है, अत: वह अनुष्ठाता को ऐश्वर्य भी शीघ्र प्रदान करता है। इस प्रकार विधेय की प्रशंसा द्वारा उक्तवाक्य वायव्यपशु की आलभन क्रिया में मनुष्य को प्रवृत्त करता है। यही इसका प्रयोजन है।

20.5.2.2 निषेधशेष —

'बर्हिषि रजतं न देयं' इत्यादिनिषेधशेषस्य 'सोऽरोदीत्', यदरोदीत् तद् रुद्रस्य रुद्रत्वम्' इत्यादेर्निषेधस्य निन्दितत्वबोधकलयार्थवत्त्वम्। अर्थात्

निषेधवाक्य द्वारा निषिद्ध पदार्थ की निन्दा करने वाला अर्थवाद 'निषेधशेष' कहा जाता है। यह निषेधवाक्य का पूरक वाक्य ही होता है। उदाहरण के लिए 'बर्हिषि रजतं न देयम्' एक निषेधवाक्य है। यह निषेधवाक्य यज्ञ में चाँदी की दक्षिणा का निषेध करता है। यहाँ 'रजतदान' निषेध्य है। इसकी निन्दा करने वाला 'सोऽरोदीत् यदरोदीत् तत् रुद्रस्य रुद्रत्वम्' यह अर्थवाद वाक्य है। इस अर्थवाद वाक्य का अपने वाच्यार्थ में कोई प्रयोजन नहीं है, किन्तु लक्षणा से यह बताता है कि रोने से जो आँसू गिरे वही रजत है, अतः यदि यज्ञ में उस रजत का दान किया जायेगा तो घर में रोने का प्रसङ्ग उठ खड़ा होगा। इस प्रकार यह अर्थवाद वाक्य उक्त निषेधवाक्य का पूरक वाक्य बनता हुआ निषेध्य की निन्दा कर अनुष्ठाता को उससे विमुख करता है।

20.5.3 प्रकारान्तर से अर्थवाद के अन्यभेद

एक विभाजन में विधि एवं निषेध को आधार बनाकर अर्थवाद का विभाजन किया गया है। प्रकारान्तर से इसके तीन भेद किये गये हैं।

1. गुणवाद 2. अनुवाद 3. भूतार्थवाद

विरोध होने पर गुणवाद, ज्ञान होने पर अनुवाद और उन दोनों के अभाव होने पर भूतार्थवाद।

20.5.3.1 गुणवाद

प्रमाणान्तर विरोधे सत्यर्थवादो गुणवादः। अर्थात् प्रमाणान्तर से विरोध होने पर, जो अर्थवाद होता है, उसे गुणवाद कहते हैं। जैसे—'आदित्यो यूपः' (तैत्तिरीयोपनिषद् 2.1.52) आदि। यूप और आदित्य के अभेद के प्रत्यक्षप्रमाण द्वारा बाधित होने के कारण इस अर्थवाद के द्वारा लक्षणा से आदित्य के समान उज्ज्वलत्वरूप गुण का प्रतिपादन किया जाता है।

20.5.3.2अनुवाद

प्रत्यक्षादिनावगतार्थस्य यो बोधकस्सोऽर्थवादोऽनुवादः। अर्थात् अनुवाद में अन्य प्रमाण से अर्थवाद के अर्थ का बोध होता है।

इसका उदाहरण है—अग्निर्हिमस्य भैषजम् (तै. संहिता 7। 4। 18। 2)

यहाँ पहले से सही सिद्ध है कि अग्नि शैत्य की औषधि है। इसी पूर्णज्ञात विषय का (अग्नौ वर्तमानं हिमेन सह विरोधित्वम्) का प्रकाशन इस उदाहरण में किया गया है। अतः 'अनुवाद' कहा जाता है।

20.5.3.3 भूतार्थवाद

प्रमाणान्तरेण विरोधोऽपि नास्ति, ततः प्राप्तिरपि नास्ति ता॒शार्थबोधकोऽर्थवादो भूतार्थवादः भूतं सिद्धयर्थः वदतीति भूतार्थवादः। तदुदाहरणम्—इन्द्र इति। अर्थात् जिसका दूसरे किसी प्रमाण से विरोध न रहा हो एवं जिसके द्वारा अवबोधित अर्थ प्रमाणान्तर से सम्भव नहीं हो उसे भूतार्थवाद कहा जाता है। यथा—

'इन्द्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छद्' इन्द्र ने वृत्र का हनन करने के लिये वज्र उठा लिया।

इस प्रकार द्विधा एवं त्रिधा अर्थवाद के भेद किये गए हैं

20.6 निषेध

पुरुषस्य निवर्तकं वाक्यं निषेधः।

अनुवाद— जो वाक्य पुरुष को किसी क्रिया को करने से निवृत्त कराता है उसे 'निषेध' कहते हैं। अनर्थ उत्पन्न करने वाली क्रियाओं से पुरुष का निवत्र्तन कराना ही निषेधवाक्यों का प्रयोजन है। जिस प्रकार विधि वाक्य प्रवर्तना को प्रतिपादित करता हुआ अपने प्रवर्तकत्व का निर्वाह करने के लिये विधीयमान यागादि में इष्ट साधनता का निश्चय कराता हुआ पुरुष को उसमें (यागादि में) प्रवृत्त

कराता है, उसी प्रकार 'न कलञ्जं भक्षयेत्'' इत्यादि निषेधवाक्य भी निषेध का बोध कराता हुआ अपने निवर्तकत्व का निर्वाह करने के लिये निषेध्य कलञ्ज भक्षण में अनिष्ट का निश्चय करता हुआ पुरुष को उससे (कलञ्ज भक्षण से) निवृत्त कराता है।

नञ् का स्वभाव—

नञश्चैष स्वभावो यत्स्वसमभिव्याहृतपदार्थविरोधिबोधकत्वम्। यथा 'घटो नास्ति' इति।

नञ् का यह स्वभाव है कि (वह) अपने साथ उच्चारित पदार्थ के विरोधी अर्थ का बोधक होता है। जैसे—'घटो नास्ति' इत्यादि में 'अस्ति' इस शब्द के साथ उच्चारित नञ् घट की सत्ता के विरोधी 'घटासत्त्व' का बोध करता है। यहाँ (न कलञ्जं भक्षयेत् आदि वाक्यों में भी) लिङ् के साथ उच्चारित वह नञ् लिङ् के अर्थ प्रवर्तना के विरोधी अर्थ निवर्तना का ही बोध करता है। क्योंकि विधि वाक्य के सुनने पर यह मुझे प्रवृत्त करता है, यह प्रतीति होती है, इसलिए निषेधवाक्य स्थल पर निवर्तना ही वाक्य का अर्थ होता है। लेकिन जब प्रत्ययार्थ का उसके (नञर्थ) साथ अन्वय में बाधक होता है तब धात्वर्थ का ही अन्वय होता है।

20.7 पारिभाषिक शब्दावली

वेद – अपौरुषेय वाक्य को वेद कहते है।

गुण – वह द्रव्य जो यज्ञ में काम आता है उसे गुण कहते है। यथा दध्ना जुहोति यहाँ दधि गुण है।

कर्म – मीमांसा में याग ही कर्म है। यथा दध्ना जुहोति में यज्ञ कर्म है।

याग – देवतोद्देशेन द्रव्यत्यागः यागः। देवता को उद्देश्य कर जिसमें द्रव्य का त्याग करते है उसे याद कहा जाता है।

धर्म – वेद द्वारा प्रतिपादित, प्रयोजनवान, तथा मांगलिक अर्थ को धर्म कहते है।

भावना- प्रयोजक के कार्य होने के अनुकूल व्यापार को भावना कहते है।

विधि –अज्ञात अर्थ के ज्ञापक को विधि कहते है। -

अर्थवाद - प्रशंसा व निन्दापरक वेदवाक्य को अर्थवाद कहा जाता है।

निषेध- निवृत्ति कराने वाला वेदवाक्य निषेध कहलाता है।

20.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. विधि का भेद है
   (अ) विनियोग (ब) निषेध
   (स) अर्थवाद (द) भावना
2. 'प्राशस्त्यनिन्दापरक वाक्यमार्थवाद:' ये परिभाषा है—
   (अ) नामधेय (ब) निषेध
   (स) अर्थवाद (द) विधि

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. विधि की परिभाषा बताते हुए उसके प्रमुख भेदों का नामोल्लेख कीजिये।
2. अर्थवाद का अर्थ समझाइये।
3. आर्थी भावना को समझाइये।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. अर्थवाद को विस्तार से समझाइये।
2. विधि को विस्तारपूर्वक समझाइये।

अभ्यास-प्रश्नों के उत्तर

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. अ 2. स

लघूत्तरात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. देखें 7.2 पर 2. देखें 7.3 पर

3. देखें 7.5 पर

निबन्धात्मक प्रश्नों के उत्तर

विद्यार्थी स्वयं खोजें।

20.9 सारांश

इस इकाई में सर्वप्रथम हमने धर्म क्या है? धर्म की व्याख्या मीमांसा किस रूप में करता है यह जाना। इसके बाद भावना की परिभाषा तथा उसके भेदद्वय शाब्दी और आर्थी का अवबोध हुआ।विधि के प्रकारों - प्रधानविधि, गुणविधि व विशिष्टविधि, प्रकारान्तर से उत्पत्तिविधि, विनियोगविधि, अधिकारविधि व प्रयोगविधि, प्रकारान्तर से अपूर्वविधि, नियम विधि व परिसंख्या विधि को जाना। अर्थवाद की परिभाषा जानते हुए हमने उसके भेद विधिशेष एवं निषेधशेष को पढ़ा तथा प्रकारान्तर से गुणवाद, अनुवाद और भूतार्थवाद को भी जाना। फिर हमने निषेध क्या है एवं नञ् का स्वभाव क्या है इस पर चर्चा की। इस प्रकार अर्थसंग्रह प्रमुख प्रतिपाद्यों का ज्ञान हमने प्राप्त किया ।

20.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अर्थसंग्रह(मीमांसा संग्रह कौमुदी व्याख्या सहित) रामेश्वर शिवयोगी भिक्षु,चौखम्भा संस्कृत सीरीज,वाराणसी, 1982.
2. अर्थसंग्रह (अर्थालोक टीका सहित), लेखक पं० पट्टाभिराम शास्त्री, सम्पादक वाचस्पति उपाध्याय, चौखम्भा प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला, दिल्ली, 1982.
3. अर्थसंग्रह, कामेश्वरनाथ मिश्र, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012.
4. A.B., Gajendragadkar, the Arthsamgrah, Motilal banarasidas, New Delhi, 2007.
5. Datta, Pramod Kumar, Artsangrah: A Critical Study With Special Refernce to its Techinical Terms, Sanskrit Pustak Bhandar, Kolkata, 2006.